परिणाम को सुधारना पुरुषार्थ नहीं

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

परिणाम का अर्थ है फल की प्राप्ति। परीक्षा देने के बाद हर व्यक्ति परिणाम की आकांक्षा करता है। यदि परिणाम अनुकूल रहता है तो प्रसन्नता होती है और यदि प्रतिकूल रहता है तो दुःख होता है। जन्म से मृत्यु तक की फिल्म निरन्तर चलती रहती है और परिणाम मिलता रहता है। पूर्व जन्म में जो कार्य किया गया है उसके ठीक अनुरूप ही परिणाम मिलेगा। जो पूर्व जन्म में बीज बोया गया है वह परिणाम के रूप में प्राप्त होता है। पिछले जन्म में जो अच्छे या बुरे भाव डाले हैं उसे इस जन्म में परिणाम के रूप में भुगतना पड़ता है। भाव के अनुरूप परिणाम मिलता है। हमने जो किया है वही मिल रहा है। पहले जन्म की भाव सत्ता इस जन्म में द्रव्य के रूप में प्राप्त हो रही है।

पुरुषार्थ क्या है? वर्तमान जीवन में अच्छे या बुरे कर्म जो हम करते हैं वह पुरुषार्थ है। परिणाम को पुरुषार्थ से नहीं सुधारा जा सकता उसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। पुरुषार्थ से हम कुछ प्राप्त करते हैं जिससे जीवन चलता है। इसी कारण आत्मा में कषाय या काम, क्रोध, मद, लोभ का जन्म होता है। इसी कारण आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकाशित नहीं हो पाता। आत्मा में राग–द्वेष का जन्म होता है राग –द्वेष के कारण आत्मा मोहग्रस्त हो जाता है। मोह का अपना एक वट वृक्ष है।

वट वृक्ष का बीज बहुत सूक्ष्म होता है, किन्तु वट वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसी प्रकार राग–द्वेष के बीज बहुत सूक्ष्म हैं, किन्तु उसका परिणाम बहुत बृहद् है। राग–द्वेष के कारण ही आत्मा को भव भवान्तर में गमनागमन करना पड़ता है। क्रोध, मान, माया और लोभ चण्डाल चौकड़ी हैं। जन्म जन्मान्तर से ये चारों एक दूसरे से मिले हैं। एक के आ जाने पर ये चारों अपने आप आ जाते हैं। क्रोध के साथ अंहकार जुड़ा रहता है। क्रोध के साथ मान, मान के साथ माया, माया के साथ लोभ अपने आप आ जाता है। राग–द्वेष के परमाणुओं को समाप्त करने से ये चारों अपने आप समाप्त हो जाते हैं। राग–द्वेष की विष बेल जिसको घेर लेती है उसको नष्ट ही कर देती है।

बंधन का अर्थ है– परतंत्रता और मुक्ति का अर्थ है स्वतंत्रता। दार्शनिक दृष्टि से यदि हम चिंतन करे तो बंधन और मुक्ति जीव के लिए है। जिनसे कर्म बंधे या कर्मों का बंधना बन्ध है। जो बंधे या जिसके द्वारा बांधा जाये या बन्धन मात्र को बन्ध कहते हैं। कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध हैं। कर्म प्रदेशों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आए हुए कर्म पुद्‌गलों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। जैसे बेड़ी आदि से बंधा हुआ प्राणी परतन्त्र हो जाता है और इच्छानुसार देशादि में नहीं आ–जा सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा परतन्त्र होकर अपना इष्ट विकास नहीं कर पाता। अनेक प्रकार के शरीर और मानस दुःखों से दुःखी होता है। राग–द्वेषादि के निमित्त से जीव के साथ पौद्‌गलिक कर्मों का बन्ध निरन्तर होता है।

जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कड़ुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की प्रकृति है अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। जीव के प्रदेशों की उथल–पुथल को अस्थिति तथा उथल–पुथल न होने को स्थिति कहते हैं। जिसका जो स्वभाव है, उससे च्युत न होना स्थिति है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है।

विविध प्रकार के पाक अर्थात् फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है। शुभाशुभ कर्म की निर्जरा के समय सुख–दुःख रूप फल देने की शक्ति वाला अनुभाग बन्ध है। कर्म रूप से परिणत पुद्‌गल स्कन्धों का परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है। दो के बिना बन्ध नहीं होता। एक हाथ से ताली जिस प्रकार नहीं बज सकती, उसी प्रकार बन्ध तत्त्व भी एक के बीच में नहीं हो सकता। सांसारिक जो विषय–सामग्री है, वह और उसका जो भोक्ता है आत्मा ये दोनों संयोग होते ही बन्ध हो जाते हैं।

कर्म पुद्‌गलों के ग्रहण को बन्ध कहा जाता है। जीव के द्वारा कर्म पुद्‌गलों का ग्रहण क्षीर–नीर की भांति परस्पर आश्लेष होता है, उसे बन्ध कहा जाता है। वह प्रवाहरूप से

अनादि और जो भिन्न–भिन्न कर्म बंधते रहते हैं, उनकी अपेक्षा सादि है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति ये सब कर्मों के आने के द्वार होने से आस्रव हैं। इनसे विपरीत सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, मोह व कषायहीन शुद्धात्म परिणति तथा मन, वचन, काय के व्यापार की निवृत्ति ये सब नवीन कर्मों के निरोध के हेतु होने से संवर हैं। आसव्र का निरोध करना ही संवर है। जिनसे कर्म रुकें, कर्मों का रुकना संवर है। जीव का चरम और परम लक्ष्य है– मोक्ष प्राप्ति। जिसने समस्त कर्मों का क्षय करके अपने साध्य को सिद्ध कर सफलता प्राप्त कर ली वह मोक्ष का अधिकारी है। बन्ध हेतुओं मिथ्यात्व व कषाय आदि के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है।